International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 6; November 2017; Page No. 400-403

प्राचीन भारत में अंक विज्ञान (1500 ई॰ पू॰ से 600 ई॰ पू॰)

डॉ॰ बजरंग लाल
प्रवक्ता, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक, विद्यालय टिटौली, रोहतक, हरियाणा, भारत।

सारांश
इस आलेख के माध्यम से शोधार्थी द्वारा अंक विज्ञान के विकास पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने 1500 ई.पू. से 600 ई. पू. तक के प्रमाणों का अध्ययन करके आलेख के माध्यम से सटीक ढंग से समझाने का प्रयास किया है जिसमें वह पूर्णतया सफल रहे हैं। अंक विज्ञान के विकास के बारे में संक्षेप में लिखकर ज्यादा समझाना शोधार्थी के गहन अध्ययन का नतीजा है। उनका यह छोटा सा आलेख गागर में सागर के समान है।

मूल शब्द : दश गुणोतर, शतोत्तर, कोटि गुणोतर, एक, द्वि, त्रयस, चत्वार, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश, शतम्।

प्रस्तावना
लगभग तीसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० में विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के मध्य व्यापारिक सम्पर्कों ने व्यवहारिक गणित अथवा माप–तौल प्रणाली के प्रस्फुटन और विकास को प्रश्रय प्रदान किया। आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है इसी सूत्र के अनुरूप व्यापारिक गतिविधियों, माप–तौल प्रणाली तथा काल गणना आदि कार्यों को मूर्त्त रूप दिया गया। वैदिक काल में शरीर के अंगों को मापने के लिए सबसे छोटे मात्रक अंगुल (0.6–1″) का प्रयोग किया जाता था। मापने के साथ–साथ तौलने की भी अनेक इकाईयों, बाटों, बटखरों तथा तराजू का प्रयोग भारत वर्ष में किया गया।

अंक गणित
यद्यपि वैदिककालीन अंक संकेतों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है तथापि अनेक उद्धरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में अंक संकेतों तथा अंक पद्धति का विकास हो चुका था। ऋग्वेद में मेद्यातिथी का उल्लेख मिलता है जिन्होंने दशमलव प्रणाली के आधार पर संख्याओं को व्यक्त करने की कल्पना प्रस्तुत की थी। 1 से लेकर 10 तक की संख्याओं को अंक पद्धति का आधार मानकर दश गुणोतर, शतोत्तर एवं कोटि गुणोतर संख्याओं का विकास किया गया। अंक पद्धति को आधुनिक स्वरूप तक पहुँचाने का श्रेय भारतीयों को ही है और भारतीयों के इस ज्ञान का समस्त विश्व ऋणी है। इसी कारण आधुनिक अंक संकेतों को हिन्दू–अरबी अंक कहा जाता है।

अंक गणित के क्षेत्र में शून्य की उत्पत्ति के संदर्भ में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद रहा है। पाश्चात्य विद्वान न्यूगेम्बर ने इसके अविष्कार का श्रेय बेबीलोन को तथा कालिन ने चीन को दिया है। परन्तु तथ्यों के निष्पक्ष अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि शून्य का अभाव भारतवर्ष, बेबीलोन तथा चीन, तीनों संस्कृतियों में लगभग एक साथ महसूस किया गया परन्तु इससे संबंधित ज्ञान के विकास में भारतीयों ने तुलनात्मक रूप से अधिक तेज गति से उन्नत्ति की।

प्राचीन भारतीय तकनीकी शिक्षा के अन्तर्गत अनेक विषयों का अध्ययन किया जाता था जिसमें से गणित एक अति आवश्यक विषय था। प्राचीन भारत में गणित तथा खगोलशास्त्र का निकटतम संबंध था। इसलिए गणित को खगोल शास्त्र से अलग करना व्यवहारिक दृष्टि से असंभव है। प्राय सभी गणितज्ञ या तो खगोलशास्त्री थे या ज्योतिषी या फिर दोनों ही भूमिकाओं का निर्वहन करते थे। प्राचीन भारतीय तकनीकी ज्ञान के महत्व को वर्तमान समय में किये जाने वाले शोधों से मान्यता मिल रही है। तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक कालीन विद्वान तथा ग्रीक दोनों ही गणित में रूचि रखते थे और उन लोगों द्वारा अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान भी किये गये, किन्तु उनके उद्देश्य तथा दृष्टिकोण भिन्न थे।[1] ग्रीक विद्वान रेखा गणित की तरफ ज्यादा ध्यान देते थे तथा अंकगणित, बीजगणित तथा खगोलशास्त्र गौण थे। ग्रीक विद्वान किसी वस्तु की संख्या की बजाय लम्बाई को ज्यादा महत्व देते थे। जबकि भारतीय गणितज्ञ संख्या को ज्यादा महत्व देते थे। अमूर्त संख्याओं के विषय में उनके विचार अधिक स्पष्ट थे जिसके कारण वे बीजगणित को विकसित करने तथा ग्रीकों से अधिक जटिल गणना करने में सक्षम हो सके।

भारतीय गणित में विचारों की अमूर्त्तता, स्पष्टता, प्रतीकात्मकता और मौलिकता पायी जाती है जबकि ग्रीक रेखा गणित प्रबल तर्क एवं सम्बद्ध विवेचन तक सीमित है।[2] ग्रीस की तरह भारत में भी विज्ञान तथा दर्शन एक दूसरे से जुड़े हुए थे। उदाहरण स्वरूप रेखागणित में विशेष अभिरूचि होने के कारण ग्रीकों ने इस विश्व में समरूपता देखी, जबकि 'शून्य–सिद्धान्त' के प्रयोग से भारतीयों ने प्रतीकों की उपयोगिता तथा शक्ति का संकेत प्राप्त किया। शून्यवाद के सिद्धान्त अनुसार यह जगत न तो सत्य है और न ही मिथ्या, न दोनों ही तथा दोनों से विहीन भी नहीं है। इस प्रकार के आध्यात्मिक विचार को विज्ञान में रूप, आकार व प्रतीक देना, मानव विचार और प्रगति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम माना जाएगा। वास्तव में शून्य ही सकल वैज्ञानिक गणना का आधार था। शून्य का सिद्धान्त न केवल गणितीय तथा वैज्ञानिक अनुसंधान है, बल्कि यह भारतीय विचार की समस्त शाखाओं, विशेष रूप से ब्रह्मवाद तथा भौतिक दर्शन में निहित है। प्रत्यक्ष से परे होते हुए भी शून्य प्रत्यक्षमूलक सामग्री का आधार है। यह दो विरोधी प्रवृत्तियों के मध्य संक्रमण स्थान है। यह कुछ भी न होते हुए सब कुछ है। इसको ब्रह्म या निर्वाण का प्रतीक भी माना जाता है। वैदिक साहित्य में शून्य शब्द का प्रयोग 'अभाव', 'तुच्छ' और 'असम्पूर्ण' के

अर्थ में हुआ है। अनेक प्राचीन भारतीय विद्वानों ने इसे दो समान और विरोधी तत्वों का योग कहा है।[3] यह केवल सकारात्मक और नकारात्मक शून्य ही नहीं, बल्कि नगण्य को जोड़ने वाला, सबका अथवा किसी का भी नहीं 'उत्पत्ति' स्थान है। शून्य से सभी संख्याओं का निर्माण होता है जबकि इसके मूल्य की कोई भी सीमा नहीं है। इसको सभी एकाकी आकार एवं संख्याओं का मुख्य भण्डार बताया गया है।

प्रारम्भ में यूरोप के विद्वान शून्य तथा दशमलव पद्धति का उद्‌गम अरब से मानते थे, किन्तु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि ये पद्धतियाँ भारत में विकसित हुई तथा अरबों ने इनको यूरोप तक पहुँचाया गया। हिन्दू इसे शून्य तथा अरब इसे सिफ्र कहते हैं। बाद में यह 'जेफिरम', 'जीफर', 'ज्योरो' तथा जीरो कहलाई। भारत द्वारा शून्य सिद्धान्त के प्रतिपादित करने से पूर्व समस्त विश्व की संस्कृतियाँ, संख्या के लिए 'चिह्नों' का प्रयोग करती थी। ग्रीकों को भी शून्य की अनन्तता के गणितीय परिणाम का अस्पष्ट अनुभव था। 830 ई० से पहले के अरबी भाषा के लेखों से पता चलता है कि दायीं और से गिनने पर प्रत्येक अंक अपनी ईकाई, दहाई, सैंकड़ा और हजार की स्थिति दर्शाता था। जहाँ पर कोई अंक नहीं होता था वहाँ एक बिन्दु लगा दिया जाता था, जो कि वर्तमान शून्यांक का पूर्व रूप हो सकता है। शून्य के प्रयोग से पूर्व गणितीय काम अत्यधिक जटिल था। जबकि भारतीय पद्धति के अनुसार बड़ी से बड़ी संख्या आसानी से लिखी जा सकती थी। भारतीय गणितज्ञों ने संख्याओं के लिए 'चिह्नों' की अपेक्षा स्थानीय मान का प्रयोग किया जिसके कारण वे असंख्य संख्याओं को अभिव्यक्त करने में सफल हो सके। भारत की इस अद्‌भुत उपलब्धि ने केवल गणित के क्षेत्र में ही योगदान नहीं दिया, बल्कि विज्ञान के क्षेत्र में भी चमत्कारिक सिद्ध हुई। यदि यूरोपीय विद्वान रोमन पद्धति के बोझिल संख्याओं में ही उलझे रहते तो वे अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधानों को कभी भी पूरा नहीं कर पाते। शून्य के अविष्कारक की तारीफ करते हुए ए. एल. बासम अपनी पुस्तक, ''द वण्डर दैट वाज इण्ड़िया'' में कहते हैं कि वह भारत का एक महान सपूत था। अपने विश्लेषणात्मक मस्तिष्क के द्वारा उसे यह महान् उपलब्धि प्राप्त हुई और इसके कारण जितनी प्रतिष्ठा उसे प्राप्त हुई उससे कहीं ज्यादा का वह अधिकारी था। गणित के किसी भी विद्वान अथवा अविष्कार ने मनुष्य की बुद्वि एवं शक्ति को इतना अधिक बलशाली नहीं बनाया।[4]

दस अंकों की सांकेतिक भारतीय अंक पद्धति को आज पूरे संसार में इस्तेमाल किया जाता है। यह अंक पद्धति भारत का मौलिक आविष्कार है। इसके कारण ही आधुनिक विज्ञान विशेष तौर पर गणित शास्त्र को एक नई दिशा मिली है। विश्व के अनेक विद्वानों ने भारतीय अंक पद्धति की भूरि–भूरि प्रंशसा की है। भारतीय अंक पद्धति के बारे में फ्रांस के प्रख्यात गणितज्ञ लालपास लिखते हैं कि केवल दस संकेतों से सभी संख्याओं को अभिव्यक्त करने की यह अद्‌भुत विधि हमें भारत से प्राप्त हुई है। इसमें प्रत्येक संकेत का परम–मान के साथ–2 स्थान–मान भी होता है। यह गहन धारणा आज हमें इतनी सरल प्रतीत होती है कि आज हम इसके महत्व पर विचार ही नहीं करते, परन्तु इसकी सरलता तथा सभी प्रकार की गणनाओं को सरल बनाने की इसकी क्षमता हमारे अंकगणित को प्रथम श्रेणी का उपयोगी अविष्कार जरूर बना देती है। जब हम देखते हैं कि प्राचीन जगत के दो महान गणितज्ञों आर्किमिड़िज व एपोलोनियस की प्रतिभाएँ भी इस धारणा के बारे में सोच न पाई, तब हमारी दृष्टि में इस अविष्कार का महत्व और भी बढ़ जाता है।[5] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में संसार को भारत की सबसे बड़ी देन–उसका कथा–साहित्य है, उसी प्रकार विज्ञान तथा गणित के क्षेत्र में भारत की सबसे बड़ी देन अंक संकेत और अंक पद्धति है। वर्तमान काल में हम जिन दस अंक संकेतों का प्रयोग करते है वे निम्न है : 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, तथा 0 । इन दस अंक संकेतों के माध्यम से हम किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या को व्यक्त कर सकते हैं। इन अंक संकेतों में अद्‌भुत शक्ति है जिसको हम साधारण नजर से नहीं पहचान पाते हैं और इन अंक संकेतों के दोहरे मान हैं।

1. प्रत्येक अंक संकेत का अपना एक स्वतन्त्र मूल्य है।
2. संख्या में स्थान–2 के अनुसार प्रत्येक अंक संकेत का मूल्य बदल जाता है।

जैसे संख्या 12341 को विचारित करें तो हम अन्तिम 1 का मूल्य सिर्फ 'एक' है जबकि प्रथम 1 का मूल्य दस हजार है, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन दस अंक संकेतों का मूल्य स्थानानुसार बदलता रहता है। इस प्रकार दस अंक संकेतों पर आधारित इस अंक पद्धति को हम दाशमिक स्थान–मान अंक–पद्धति कहते हैं।[6] इन सभी अंकों में शून्य सबसे मूल्यवान और अद्‌भुत संकेत है। संस्कृत भाषा के एक, द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट आदि शब्द बहुत पुराने समय से प्रचलित हैं। इस प्रकार की संख्या–सज्ञाएं ग्रीक, लैटिन और पारसी भाषा में भी देखने को मिलती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यूनानी, पारसी तथा भारतीय आदि का आपसी सम्पर्क था। इसके अतिरिक्त भाषा–परिवारों की पहचान के लिए देवताओं के नाम तथा संख्या–संज्ञाएं बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं।[7]

इण्डो–यूरोपीय (आर्य) भाषा परिवार सख्या–संज्ञाएँ

	संस्कृत	यूनानी (ग्रीक)	लैटिन	लियुआनी	तेखारी
1	एक	Oine	Unus	Venas	Som
2	द्वि	Dyo	duo	du, dvi	-
3	त्रयस	Treis	Tres	Trys	Trai
4	चत्वार	Tessares	Quattvor	Ketvri	Stwer
5	पंच	Pante	Quinque	Penki	Pis
6	षट्	Heze	Sex	Szezi	Skas
7	सप्त	Hepta	Septem	Septyni	SUKT
8	अष्ट	Octo	Octo	Asztuni	Okt
9	नव	ennea	novem	devyni	Nu
10	दश	deka	decem	-	Sak
100	शतम्	hecaton	centum	Szimtas	Kante

ईसा पूर्व चौदहवीं सदी में हमें पश्चिमी एशिया में शुतर्ण, दुशरत, अर्ततम आदि नामों के राजाओं की जानकारी मिलती है। इसी प्रकार मित्तन्नी अभिलेखों में उरून (वरूण), इंदर (इंद्र), मित्र और नाशत्तिअ (नासत्यों, अश्वनी कुमारों) के नाम देखने को मिलते हैं। इन देवताओं का वेदों में भी वर्णन मिलता है। मितन्नी राज्य से घोड़ों के प्रशिक्षण से सबंधित पुस्तक जो कि किक्कुलि द्वारा लिखी गई थी मिली है जिसमें एक वर्तन्न (एक घुमाव), तेर वर्तन्न (तीन घुमाव), पंच वर्तन्न (पाँच घुमाव), सत वर्तन्न (सात घुमाव) तथा नव वर्तन्न (नौ घुमाव) जैसे वाक्य लिखे गये हैं। निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि वेदों में पाई जाने वाली संख्या–संज्ञाएँ बहुत पुरानी हैं, और यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय संख्या–संज्ञाएँ वैदिक देवताओं से पुरानी भले ही न हों, परन्तु इन देवताओं जितनी पुरानी अवश्य हैं। इस प्रकार ऋग्वेद के एक उल्लेख में ऐसा वर्णन मिलता है कि ''मुझे ऐसी हजार गायें दो, जिनके कानों पर आठ लिखा हो''

सहस्त्रं में ददतो अष्टकर्ण्यः।।[8]

ऋग्वेद में गायों का अत्यधिक महत्व था। ऋग्वैदिक समाज में गायें विनिमय के रूप में प्रयुक्त होती थी। गायों के कानों पर या शरीर के अन्य स्थानों पर स्वस्तिक जैसे चिह्न या अंक संकेत दाग दिये जाते थे। अष्टाध्यायी के सूत्र भी इसकी पुष्टि करते हैं। तथा उनकी व्याख्या भी यह सिद्ध करती है कि अष्टकर्णी गौ वह गाय या बैल होता है जिसके कान पर आठ (8) का संकेत बना हो।[9]

अनेक स्थानों पर संख्या–संकेतों या संज्ञाएँ यह वर्णित करती हैं कि ऋग्वैदिक काल में गणना पद्धति 'दाशमिक' थी अर्थात दस पर आधारित थी। आज भी भारत में गणना का आधार दस ही है। सम्भवतः दोनों हाथों की उंगलियों की संख्या दस होना इसकी उत्पत्ति का साधन रही है। ऋग्वेद में एक, द्वि, त्रि, चतुर, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश, सहस्त्र, अयुत (10000) आदि देखने को मिलती हैं। ऋग्वेद में पायी जाने वाली सबसे बड़ी संख्या शष्टिं सहस्त्रा नवतिं नव (60,099) है।[10] ऋग्वेद में वर्णित नियत, प्रभुत और अर्बुद शब्द सम्भवतः कालांतर में संख्याओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अयुत (1,00,000) जोकि ऋग्वेद की एक बड़ी इकाई थी वह आगे चलकर यजुर्वेद काल में परार्ध (1,00,00,00,00,000) तक पहुंच गई। इस काल में दशगुणोत्तर संज्ञाएं निम्नलिखित हैं :

1. नियुत (1,00,000)
2. प्रयुत (10,00,000)
3. अर्बुद (1,00,00,000)
4. न्यर्बुद (10,00,00,000)
5. समुद्र (1,00,00,00,000)
6. मध्य (10,00,00,00,000)
7. अतं (1,00,00,00,00,000)
8. परार्ध (10,00,00,00,00,000)

इन संख्याओं की पुष्टि तैतीरीय, काठक और मैत्रायणी संहिताओं में वर्णित दशगुणोतर संज्ञाओं से होती है। तैतीरयी संहिता में सम और विषम संख्याओं का वर्णन भी मिलता है। यजुर्वेद में 4 का 12 तक गुणन–क्रम अर्थात् 4 का पहाड़ा भी वर्णित है। आज हम जिन संख्या–संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं ये सभी वैदिक कालीन विद्वानों की ही देन हैं। वैदिक काल में उन्नीस (ऊनविंशति) को एकान्नविंशति या एकोन्नविंशति कहा जाता था परन्तु, धीरे–धीरे कुछ समय पश्चात 'एक' उपसर्ग को त्याग दिया गया। यजुर्वेद में 19 की नवदश तथा ऋग्वैदिक काल में 99 को नव–नवति शब्दों से पुकारा जाता था। तमिल भाषा में संख्या संज्ञाओं में घटाने की इस पद्धति का प्रचलन नहीं दिखाई देता है। इस भाषा के अनुसार 9, 10, 20, 19 तथा 29 को क्रमशः ओंबदु, पत्तु, इरूबदु, पत्तु, ओंबद तथा इरूबदु–ओबंद कहा जाता है। ऋग्वैदिक काल में शून्य के स्थान पर 'श्वे' शब्द का उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ 'सुराख' अथवा छेद है। आगे चलकर वेदांग साहित्य में हमें विकसित अंक पद्धति का विकास किया गया। छांदोग्य उपनिषद से भी हमें ये जानकारी मिलती है कि प्राचीन भारत में पढ़ाये जाने वाले विषयों के अर्न्तगत अंकगणित का भी समावेश था। इसके एक उल्लेख में यह वर्णन किया गया है कि जब नारद ब्रह्मविद्या सिखने सनत्कुमार के पास पहुँचे तो वे बताते है कि उन्होंने राशिविद्या (अंक गणित) नक्षत्र–विद्या आदि का अध्ययन पहले ही कर चुके हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ऐसा ही उदाहरण प्राप्त होता है कि चूड़ाकर्म के बाद विद्यार्थी को लिपि और संख्यान अर्थात गणनाशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

''वृत्त चौलकर्मा लिपि सख्यानं चौपयुञजीत''।

जैन धर्म के अनुसार भी गणित एक महत्वपूर्ण शास्त्र है। गणितानुयोग जैन ग्रंथ में गणित के अध्ययन के महत्व को बताया गया है। जैन ग्रंथों में हमें गणित के बारे में अनेक जानकारियाँ मिलती हैं जिससे यह पता चलता है कि अनेक जैनाचार्य गणितज्ञ हुए।

महाभारत तथा रामायण में भी हमें बड़ी–2 संख्याओं के प्रयोग होने की जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरणस्वरूप जब रावण का एक गुप्तचर राम की सेना की संख्या की जानकारी देता है तो वह कोटि, शंख, महाशंख, वृंद, महावृंद, पदम्, महापदम्, खर्व, महाखर्व, समुद्र और महौघ आदि शतगुणोतर संज्ञाओं का वर्णन करता है। महौघ का अर्थ 10^{55} है।[11] संख्या संज्ञाओं के प्रयोग से यह जानकारी अवश्य प्राप्त होती है कि इन संख्या–संज्ञाओं का ज्ञान उस काल में था तथा इन्हें वे प्रायः प्रयोग करते थे।

बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तार में भी कोटि के आगे की शतगुणोत्तर गणना का वर्णन मिलता है। इसमें वर्णित सबसे बड़ी संख्या तल्लक्षणा 10^{53} है। इसी प्रकार पालि भाषा के व्याकरण में संख्या–संज्ञाओं की सूची में असंख्य 10^{140} तक वर्णित है। जैना अनुयोगद्वार–सूत्र में संसार के समस्त जीवों की संख्या 2^{96} बताई गई है। इसी प्रकार एक अन्य जैन ग्रंथ में शीर्षक प्रहेलिका ($84,00,000^{28}$) संख्या–संज्ञा का वर्णन मिलता है। उस समय के व्यापारियों के लिए इतनी बड़ी संख्या के प्रयोग की जरूरत न पड़ी हो परन्तु इसका अस्तित्व इसके ज्ञान की जानकारी जरूर देता है।

सारांश

प्रस्तुत शोध में हमने वैदिक कालीन तथा संसार की अनेक पुरानी अंक पद्धति, गणितीय खोजों का अध्ययन करके यह पाया कि आज के युग के सारे विश्व में भारतीय अंक पद्धति का प्रयोग हो रहा है। यह भारतीय तकनीकी शिक्षा की सम्पूर्ण संसार की अनुपम देन है। अंक पद्धतियों की जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त उनके विकास क्रम, अक्षर संकेतों तथा लिपियों के विकास पर नजर डालना भी अति आवश्यक है। अंक–संकेत और चित्र संकेत पाषाण काल से आड़ी या खड़ी रेखाओं के रूप में अस्तित्व में आ चुके थे। सम्भवतः उस समय चित्रात्मक लिपि प्रचलित थी जिसके अन्तर्गत जैसी वस्तु होती थी वैसा ही उसका चित्र बनाया जाता था। नव पाषाण काल के आते–आते कृषि कर्म में मनुष्य को अपने आस–पास के व्यक्तियों तथा पशुओं की जानकारी रखने की आवश्यकता अनुभव हुई। जैसे–जैसे इनकी संख्या में वृद्धि हुई होगी वैसे–वैसे जितने व्यक्ति या पशु उतनी रेखा वाला नियम कमजोर पड़ने लगा और उनकी गणना–पद्धति में सुधार की आवश्यकता पड़ी। वैदिक काल में हाथों की उंगलियों से संख्या की जानकारी दी जाती थी जिससे हाथों की उंगलियों के बराबर अर्थात 10 का आधार अस्तित्व में आया। बाद में विविध चिहन् अस्तित्व में आये जिनसे दस रेखाओं को किसी एक चिहन् द्वारा प्रस्तुत किया जाने लगा। इस प्रकार सौ, हजार, दस हजार, लाख आदि के लिए भी स्वतन्त्र चिहन् अस्तित्व में आये।[12] लोहे के उपकरणों से उत्पादन ने वृद्वि हुई जिससे मनुष्य को और अधिक विकसित लिपि तथा अंक पद्धति की आवश्यकता महसूस हुई। 1000 ई. पू. के आस–पास पश्चिमी एशिया की संस्कृतियों में वर्णमालात्मक लिपि का जन्म हुआ। इन लिपियों में 50 से कम ही अक्षर संकेत होते थे। भारतीय प्राचीन ब्रह्म लिपि वर्णमालात्मक थी। सातवीं–आठवीं सदी ई.पू. में यह लिपि अस्तित्व में आ चुकी थी। परन्तु दुर्भाग्य से इस लिपि के सबसे प्राचीन उपलब्ध अभिलेख ईसा पूर्व तीसरी सदी से पुराने हमें आज प्राप्त नहीं हैं। संसार के सभी प्राचीन सभ्यताओं में वर्णमालात्मक लिपी का प्रयोग ढ़ाई–तीन हजार साल पहले हो चुका था। केवल चीन और जापान में ही भावचित्रात्मक और अक्षर–सकेतों के मिश्रण वाली लिपि का प्रयोग हुआ।

शून्य पर आधारित दाशमिक स्थानमान वाली अंक पद्धतियों का अविष्कार भारत में हुआ तथा बाद में ये अंक पद्धतियाँ संसार के विभिन्न देशों में प्रचलित हुई। बड़े आश्चर्य की बात है कि यह अंक पद्धति भारत में खोजी गई फिर भी इसका सही लाभ यूरोप के गणितज्ञों ने उठाया।

सन्दर्भ

1. सिंहल दामोदर, भारतीय संस्कृति और विश्व सम्पर्क, पृ. 167
2. राधाकृष्णन् (सं॰) इण्डियन फिलोसोफी, सिंह, ए.एन., 431
3. हाइमान, पूर्वोक्त, पृ. स. 24 एवं 95–104
4. बाशम, ए. एल, ''द वण्ड़र दैट वास इण्डिया,'' पृ. 49
5. मुले, गुणाकर, भारतीय अंक पद्धति की कहानी, पृ. 16
6. मुले गुणाकार, पूर्वोक्त, पृ. 14
7. मुले, गुणाकार, पूर्वोक्त, पृ. 40
8. ऋग्वेद, 10/62/7
9. अष्टाध्यायी 6/2/112, 6/3/115
10. ऋ॰ 1/5/9
11. मुले, गणाकार, पूर्वोक्त, पृ. 44
12. मुले, गुणाकार, पूर्वोक्त, पृ. 92